नर्मदा योजना के विस्थापितों का संघर्ष

और

हासिल ऐतिहासिक पुनर्वास-नीति

गुजरात का अनुभव

Narmada Project

Yuva Sangarsh Vahini, Gujarat

छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी

मांगरोल, राजपीपला, भरूच

गुजरात

COMMUNITY HEALTH CELL

पुनर्वास की नयी दिशा

I

दिसम्बर 1987 में गुजरात सरकार ने तीन शासनादेशों को जारी कर पुनर्वास की नयी नीति की घोषणा की। और इसी के साथ ही **सरदार सरोवर (नर्मदा) योजना** के विस्थापितों द्वारा न्यायिक एवं उचित पुनर्वास के लिये जुलाई 1980 से जारी संघर्ष का पहला चरण पूरा हुआ।

गुजरात के बाहर संघर्ष की इस प्रक्रिया के बारे में बहुत कम जानकारी है और इस नीति के स्वरूप और उसके महत्व के बारे में तो उससे भी कम जानकारी है। इस आलेख के द्वारा हम इस नीति, उसे पाने के लिये किये गये संघर्ष के मुख्य अंश तथा देश के अन्य हिस्सों में विस्थापितों द्वारा चलाये जा रहे संघर्षों पर इस नीति से पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों के बारे में जानकारी देने की कोशिश कर रहे हैं।

नर्मदा जल विवाद आयोग का पंचाट-फैसला

नर्मदा योजना के विस्थापितों ने अपने सतत तथा सचेत संघर्ष के माध्यम से विस्थापन के पूर्व पुनर्वास की वैसी नीति बनवाई है, जिससे विकास योजनाओं के संदर्भ में अपरिहार्य क्रांतिकारी परिणाम की संभावना है। इतना हासिल करने की प्रक्रिया में विकास व पर्यावरण की जननीति के लिये विश्व में चल रहे संघर्षों के दबाव तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं से साझे की समुचित नीति का अनुसरण किया गया है।

इस कहानी का सिलसिला शुरू होता है **नर्मदा जलविवाद आयोग** के उस पंचाट (ट्रिब्यूनल) के फैसले से जो 1978 में दिया गया। पंचाट-फैसले ने सरदार सरोवर जैसी जन-उपयोगी कही जानेवाली योजनाओं के कारण विस्थापित होनेवाले लोगों के पुनर्वास के लिये एक नयी दिशा का सूत्रपात किया। भारत के स्वातंत्र्योत्तर इतिहास में विस्थापित्तों के पुनर्वास की समस्या पर इतने मौलिक ढंग से पहले कभी विचार नहीं किया गया है। इससे पहले कि हम इस फैसले के महत्वपूर्ण मुद्दों की चर्चा करें, यह बता देना जरूरी लगता है कि **पुनर्वास की यह क्रांतिकारी नीति विस्थापित्तों के लिये सरकार की चिंता या किसी लोककल्याण की भावना का परिणाम नहीं था।** इसके पीछे इस विवाद से सम्बद्ध राज्यों की उस वक्त की प्रतिद्वन्दिता एवं स्वार्थी राजनैतिक पैंतरेबाजियों का बड़ा हाथ था। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश ने इस योजना

को अटकाने की कोशिश में पुनर्वास को अपना हथियार बनाया। उधर गुजरात सरकार भी एकनिष्ठा से किसी भी कीमत पर इन बाधाओं को दूर करने के लिये कमर कसे हुई थी। इस विकट बाधा को पार करने के लिये गुजरात सरकार ने एक बड़ा जुआ खेला। उसने महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के सभी विस्थापितों को सरदार सरोवर द्वारा सिंचित इलाकों में बसाने की पूरी जिम्मेवारी अपने सिर ले ली। पंचाट (ट्रिब्यूनल) ने जो तीनों राज्यों की टकराहट को टालने के लिये बनी थी, अपने फैसले में विस्थापन के दायरे में आनेवाले लोगों को स्पष्ट और असंदिग्ध परिभाषा से युक्त छोटे परिवार की इकाइयों में गिनना निर्धारित किया था। पंचाट के फैसले के अनुसार प्रत्येक विवाहित या अविवाहित तथा 18 वर्ष की उम्र वाले प्रत्येक बालिग पुरुष को पृथक परिवार मानते हुए सभी परिवार-इकाई पर कम से कम 5 एकड़ वैसी जमीन दी जानी थी, जो सिंचाई लायक हो। स्पष्टत: उन्हें भी जिनकी 5 एकड़ से भी कम जमीन बांध की तलहटी में डुबनेवाली हो। फैसले में आगे कहा गया कि विस्थापित अगर चाहें तो अपने ही प्रांत में बस सकते हैं और उक्त सुविधा तब उन्हें गुजरात सरकार के खर्च पर मिलेगी। संकीर्णमना गुजरात सरकार आश्वस्त थी कि पंचाट के उक्त फैसले के इन क्रांतिकारी प्रावधानों के बावजूद गरीब व नासमझ विस्थापितों को पुनर्वास की सुविधाओं से वंचित रखना मुश्किल नहीं रह जायेगा। गुजरात सरकार को यह भरोसा अपने पुराने पुनर्वास कार्यों के अनुभव से था जहां निर्दयतापूर्वक बेदखल किये जाने पर भी विस्थापितों ने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया था। मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र सरकारें गुजरात सरकार के वातानुकूलित सचिवालय में अधिक से अधिक कुछ क्षणिक परेशानी पैदा कर सकती थीं, इससे ज्यादा कुछ नहीं। लेकिन दुर्भाग्यवश गुजरात सरकार के लिये यह सफर इतना आसान साबित नहीं हुआ, जितना उसने मान लिया था।

पंचाट-फैसला हालांकि उपरोक्त राजनैतिक पैंतरेबाजियों का परिणाम था, फिर भी उसने भविष्य के संघर्ष की एक आधारशिला रख दी थी, क्योंकि :—

1. पंचाट फैसला एक वैधानिक कानून की हैसियत रखता है और इसे अदालत के माध्यम से लागू करवाया जा सकता है।
2. यह विस्थापित परिवार की सुस्पष्ट एवं असंदिग्ध व्याख्या करता है। इससे उन विस्थापितों को, खासकर आदिवासियों को लाभ होगा जो संयुक्त खातेदारी जमीन रखते हैं।
3. इसमें हर विस्थापित परिवार को न्यूनतम 5 एकड़ सिंचाईयोग्य जमीन का हकदार करार दिया गया है। ऊपर के दो मुद्दों के साथ इसे जोड़कर देखें तो वास्तव में यह एक बुनियादी सुधार है।

परन्तु एक महत्वपूर्ण मुद्दा इसमें नहीं है। फैसला उन लोगों के बारे में कुछ नहीं कहता, जो जंगल या सरकारी परती जमीन जोतते हैं, जो सरकारी भाषा में अवैध कब्जेदार या जोतदार हैं। यह फैसला भूमिहीन विस्थापितों के अधिकार को भी नजरअन्दाज करता है। इन्कार करता है कि वे भी कुछ सुनिश्चित जमीन अथवा जीवनयापन का साधन प्राप्त करने के हकदार हैं। ये त्रुटियां इस अनुमान की पुष्टि करती हैं कि पंचाट द्वारा निर्धारित पुनर्वास का यह समस्त आयोजन इस दुर्भावना पर आधारित था कि गरीबों का जीवन कुछ मायने नहीं रखता।

जून 1979 का शासनादेश

गुजरात सरकार की अविश्वसनीयता का पहला सबूत आया जून 1979 (11-6-1979) के उस शासनादेश से जो **सरदार सरोवर** व गुजरात की अन्य बड़ी व मध्यम सिंचाई योजनाओं से विस्थापित होने वालों के पुनर्वास के लिये जारी किया गया था। इसमें **नर्मदा जलविवाद पंचाट फैसले** का उल्लेख तक नहीं है। गुजरात सरकार को पंचाट द्वारा प्रदत लाभ कम से कम गुजरात के विस्थापितों पर तो लागू करना ही था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। गुजरात सरकार ने किसी मुनाफाखोर वनिये को शोभा देनेवाली धूर्तता से शासनादेश में एक छोटा पर महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया, जिसके कारण हर विस्थापित परिवार का कम से कम 5 एकड़ जमीन पाने का हक समाप्त हो गया। इस शासनादेश से 5 एकड़ का अधिकार अब हर परिवार के लिये न होकर सिर्फ खातेदार के लिये रह गया। यह एक घातक परिवर्तन था। गुजरात व अन्य प्रदेशों के आदिवासी इलाकों में जमीन की मालकियत आम तौर पर संयुक्त खातेदारी की है। हर खाते पर दो-तीन या उससे ज्यादा बालिग परिवार निर्भर होते हैं। इस परिस्थिति का कारण भी वर्षों से चली आ रही प्रशासनिक अकुशलता एवं भ्रष्टाचार ही है। गुजरात सरकार ने जानबूझकर इस परिस्थिति का अनुचित लाभ उठाने का निश्चय किया। यह सरकार का टुच्चापन था। इस शासनादेश को रद्द करवाने के हमारे सभी प्रतिवेदनों को सरकार ने ठुकरा दिया। यह शासनादेश **मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र** तथा **गुजरात** के विस्थापितों के साथ भेदभाव बरतता है—हमारी इस दलील का मखौल बनाया गया। घटाये गये प्रावधान वाले इस शासनादेश का अमल भी सही अर्थ में नहीं किया गया। **रॉक फिल डाईक्स** के कारण जो 5 गाँव सबसे पहले खाली करवाये गये, उनके विस्थापितों को **सरकार** ने उनके समाज व संस्कृति से कोसों दूर न्यूनतम 5 एकड़ परती जमीन देने का प्रस्ताव किया, जिसे विस्थापितों ने ठुकरा दिया। सरकार ने अविलम्ब क्रूरता के साथ जवाब दिया—"यदि यह जमीन तुम अविलम्ब मंजूर नहीं करते तो न्यूनतम 5 एकड़ वाला अधिकार तुम खो देते हो"। (याद रहे 5 एकड़ हर खाते के लिये न कि हर परिवार के

लिये)। इसलिये विस्थापितों के लिये एक ही चारा रह गया था कि मुआवजे की रकम से जितनी मिले उतनी निजी जमीन खरीद लें। गुजरात सरकार ने भूमिहीन एवं तथाकथित अवैध काश्त करनेवालों के मामलों पर विचार करने से भी इन्कार कर दिया। इन अभागों को मिली सिर्फ दो गुंठा वासगीत की जमीन। इनके जीवन-यापन का सवाल? सरकार की बला से! विकास के नाम पर ऐसा छिछोरा और अमानवीय दृष्टिकोण! एक तरफ जहाँ पुनर्वास के मद में पैसे बचाने के लिये ऐसी निकम्मी कोशिशें हो रही थीं वहीं दूसरी ओर केवडिया कॉलोनी (योजना का क्षेत्रीय मुख्यालय) एवं अन्य स्थानों पर आलीशान ठाटदार अतिथिघरों व आवासों पर पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा था। सिर्फ 15-20 साल काम में आनेवाले कुछ सौ अधिकारियों के लिये एक नगर के निर्माण के लिये गुजरात सरकार ने 49 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया जबकि तीनों राज्यों के विस्थापितों को बसाने के लिये सिर्फ 19 करोड़ का। सिंचाई विभाग के उच्चाधिकारियों के जेहन से पुनर्वास का प्रश्न कोसों दूर था तथा विस्थापितों का भविष्य अन्धकारमय। यह 1981 का साल था। सत्ताधारी नेता भी चिन्तित थे व आराम के साथ गम फरमा रहे थे। उनके द्वारा दिखाये सब्जबागों को उजड़ते ज्यादा समय नहीं लगा।

1983 के उत्तरार्द्ध में हमें पता चला कि विश्वबैंक भी पुनर्वास के मामले में गहरी दिलचस्पी लेने लगा है। बैंक ने जिन योजनाओं को ऋण दिया है उनसे पर्यावरण व शोषित तथा आदिवासी जनसमूहों पर पड़े दुष्प्रभावों के कारण पर्यावरण व विकास के प्रति मानवतावादी जनदृष्टिकोण रखने वाले दुनिया के कई समूहों की आलोचना का शिकार विश्वबैंक हुआ। इन समूहों के प्रभावी दबाव बनने की वजह से ही बैंक के रूख में फरक आया। हमने विश्वबैंक को एक लम्बा पत्र लिखा जिसके संक्षिप्त जवाब में विश्वबैंक ने जताया कि विस्थापितों के समुचित पुनर्वास को वह अपना दायित्व समझता है तथा इस समस्या के प्रति सचेत है।

वह दौर ऐसा आ गया था जब विस्थापितों में संगठित प्रतिरोध की प्रक्रिया भी गति पकड़ रही थी। हम देख रहे थे कि विस्थापितों के सामने धीरे-धीरे लेकिन स्पष्ट उजागर होने लगा था कि सरकार उनके साथ कैसी-कैसी गन्दी चालें चल रही है। आज तक दब्बू बनकर सरकार के स्वेच्छाचारी आदेशों के आगे जो सदा सिर झुकाते आये थे उन विस्थापितों ने अपने आगे डाले जाने वाले इन टुकड़ों को अस्वीकार करने का निश्चय किया। एक आवाज के साथ वे संघर्ष के लिये उठ खड़े हुए। 8 मार्च 1984 को बांध के किनारे के गाँव बडगाम से एक विशाल रैली ने केवडिया कोलोनी की ओर प्रस्थान किया जिसमें गुजरात के सभी गाँवों और महा-

राष्ट्र के उन नौ गाँवों के विस्थापितों ने हिस्सा लिया जो प्रथम दौर में डूबने वाले थे। रैली के अन्त में गुजरात सरकार को एक ज्ञापन दिया गया जिसमें **नर्मदा जल विवाद पंचाट** के अनुसार न केवल भूमिवान किसानों वरन् जंगल व परती जमीन जोतने वालों के लिए भी जमीन के अधिकार की मांग की गई। इसके पहले गुजरात में असरग्रस्त विस्थापितों ने कभी स्वयं ऐसी मांग नहीं की थी। आत्मसन्तुष्ट गुजरात सरकार के लिए यह एक अप्रतिम अनुभव था जिसने उसके दर्प को चूर-चूर कर दिया। इसके बाद हड़बड़ाये सिंचाईमन्त्री ने प्रभावित गाँवों में पहुँचकर जिस प्रकार से मांगों को स्वीकार करने का वादा किया वह भी गाँव वालों के लिए अपूर्व था। इसके बाद के तीन साल कमोवेश जिन नाटकीय घटनाओं से भरे हुये थे, इन सबके विस्तार में गए बगैर हम सिंचाईमन्त्री द्वारा दिये गये उदार आश्वासन और सरकार का इन आश्वासनों से मुकर जाना, सरकार का बडगाम के असरग्रस्तों की जमीन पर अवैध कब्जा, निजी जमीन पर से रॉक फिल डाइक्स के लिए मिट्टी ले जाने वाले ट्रकों को रोकने के लिये 'रास्ता रोको' आन्दोलन, गुजरात के उच्चन्यायालय तथा वाद में सर्वोच्च न्यायालय में याचिका, सरकार द्वारा जानबूझकर सर्वोच्च अदालत द्वारा दिये गये अन्तरिम स्थगन आदेश का उल्लंघन, सर्वोच्च अदालत द्वारा **श्री लता स्वामीनाथन व महेन्द्र चौधरी जांच आयोग** का गठन व उसके द्वारा सरकार को दोषी पाया जाना इत्यादि घटनाओं का हम उल्लेख भर करते हैं।

दूसरी ओर इनके समानान्तर घटनाओं की एक दूसरी श्रृंखला भी जारी थी। इग्लैण्ड की दो संस्थाओं **आक्सफाम व सरवाइवल इंटरनेशनल** ने सरदार सरोवर के विस्थापितों के लिए एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय अभियान का आरंभ किया। इस व्यापक प्रचार का लक्ष्य विश्वबैंक के वाशिंगटन स्थित मुख्यालय को बनाया गया। विश्वबैंक के एक अधिकारी के शब्दों में **सरदार सरोवर** के पुनर्वास का सवाल एक **यक्षप्रश्न** बन गया। इस समस्या को नजरअंदाज करना विश्वबैंक के लिए अब लगभग असंभव हो गया। 1984 में ही **विश्वबैंक** पुनर्वास सम्बन्धी हमारी ठोस मांगों की जानकारी कर चुका था। अपने सलाहकार **डा० स्कडर** के द्वारा। **डा० स्कडर** एक मानवशास्त्री हैं, जिन्होंने अपना खासा समय दुनिया भर में विस्थापितों की समस्या के अध्ययन में बिताया है। विस्थापितों के लिए उनकी भूमिका असंदिग्ध है। उन्हें डर था कि शायद विश्वबैंक पुनर्वास के प्रश्न को इतनी गंभीरता से न ले। इसलिए जब उन्हें 1983 में इस बात का पता चला कि **छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी** गुजरात के विस्थापितों की समस्या के लिए सक्रिय रूप से काम कर रही है तो मौका मिलते ही उन्होंने गुजरात सरकार पर हम लोगों से मुलाकात के लिए दबाव डाला तथा राजी कर लिया। उनका विस्थापितों के बारे में दीर्घ अनुभव और

हमारी ठोस व निश्चित जानकारी दोनों का समावेश उन शर्तों में हुआ जिनके आधार पर विश्वबैंक के साथ ऋण-समझौता पर गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व भारत सरकार ने मई 1985 में हस्ताक्षर किये। ऋण-समझौते में पंचाट फैसले द्वारा किये गये प्रावधानों का और विस्तार एवं सुधार किया गया है। इसमें कई ऐसे प्रावधान हैं जो समस्या की वास्तविकता को बेहतर ढंग से परिलक्षित करते हैं तथा 'अवैध जमीन' जोतनेवालों एवं भूमिहीन विस्थापितों के हितों का रक्षण करते हैं जो कि पंचाट फैसले में नहीं हैं। विश्वबैंक का शिष्टमंडल जो हर छठे महीने आता है, अब इन सवालों पर पहले से अधिक छानबीन करने लगा।

विस्थापितों का दृढ़प्रतिज्ञ एवं एकजुट प्रतिकार, विश्वबैंक पर प्रभाव डालने वाले प्रचार अभियान एवं सर्वोच्च न्यायालय के मुकदमे आदि के दबाव के नीचे दबी गुजरात सरकार रुक रुक कर अनिच्छा से एक के बाद एक राहतों की घोषणा करने लगी। अब वो दिन लद चुके थे जब गुजरात सरकार उच्च एवं सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल किये गये हलफनामों में ऐंठकर कहती थी कि अनधिकृत जुताई करने वाले विस्थापित चोर हैं, मुजरिम हैं, और उन्हें मुआवजा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। 30 मई 1985 का शासनादेश इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था परन्तु चालाकी से हलफनामे के एक परिशिष्ट में चुपचाप यह जोड़ दिया गया कि अनधिकृत जमीन जोतने वाले भी कम से कम 3 एकड़ व अधिकतम 5 एकड़ जमीन पाने के हकदार होंगे। जिसमें इस बात का कोई जिक्र नहीं था कि कौन सी जमीन दी जाएगी तथा यह कैसे आवंटित की जाएगी। परन्तु यह प्रभावित लोगों के बीच स्पष्ट था और वे परती तथा असिंचित जमीन स्वीकार करने को राजी नहीं थे। इस प्रकार एक महत्वपूर्ण विजय हासिल हुई व संघर्ष जारी रहा।

नवम्बर 1985 का शासनादेश

इसी प्रकार गुजरात सरकार ने भूमिवान विस्थापितों के लिए 1 नवम्बर 85 के शासनादेश में कुछ और राहतों की घोषणा की। ये राहतें विश्वबैंक के साथ हुए ऋण समझौते के अंशतः अनुरूप थीं। इसमें यह स्वीकार किया गया था कि नर्मदा जल विवाद फैसले के प्रावधान गुजरात के भूमिवान विस्थापितों पर भी लागू होंगे। सिद्धान्ततः इस बात को स्वीकार किया गया कि जमीन-मालिक परिवार को अपनी पसन्द की न्यूनतम 5एकड़ सिंचाईयोग्य जमीन प्राप्त करने का अधिकार होगा। अपनी पसंद की जमीन के अधिकार की बात पंचाट-फैसले में भी नहीं थी। इस शासनादेश में हर खातेदार के स्थान पर हर **परिवार** को न्यूनतम 5एकड़ अपनी पसंद की सिंचाई योग्य जमीन पाने का हक दिया गया। इन सब प्रावधानों के होते हुए व सिंचाई मंत्री

की सार्वजनिक घोषणाओं के बावजूद गुजरात सरकार ने अपनी तरकीबें आजमाना जारी रखा। उसकी कोशिश यही थी कि ये सारे महत्वपूर्ण लाभ आदिवासी विस्थापितों को न मिल सकें। नवम्बर 1985 के शासनादेश की शब्दरचना बड़ी चतुराईपूर्वक की गई थी। फिर भी इसमें अपनी पसंद की 5 एकड़ जमीन की बात कही गयी थी वैसे यह पसन्द सिर्फ सरकार द्वारा बतायी जाने वाली तीन तरह की जमीनों तक ही सीमित थी। यह हमारे मत में सरासर धोखा था जिसे उस समय विश्वबैंक सहित कई लोग नहीं देख सके। विस्थापित लोगों को वे जमीनें न तो वास्तव में पसन्द थीं न ही सरकार द्वारा बतायी जाने वाली इन जमीनों को वे स्वीकार करने वाले थे। इस परिस्थिति में शासनादेश क्रूर विकल्प प्रस्तुत करता है कि यदि इनमें से कोई पसन्द न हो तो 5 एकड़ वाला अधिकार रद्द समझा जायेगा। इसके बाद अगर वे निजी जमीन खरीदना चाहें तो अधिग्रहण की जाने वाली जमीन के बराबर ही खरीद सकेंगे। सरकार इस काम में उनकी मदद करेगी। यह दीये की तरह साफ था कि यह जून 1979 के कुख्यात गरीब-विरोधी शासनादेश को पुनर्जीवित करने की साजिश सरकार कर रही है। कृपणता की एक पर्त पर दूसरी पर्त जमती जा रही थी। एक ओर नर्मदा विकास विभाग की फिजूलखर्ची का पार नहीं था, दूसरी ओर योजना के खर्च का अनुमान दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था। सन 1980 में योजना का अनुमानित खर्च 3300 करोड़ रुपये था जो 83-84 में बढ़कर 6000 करोड़ हो गया और अब 12000 करोड़ रु० कहा जा रहा है। गुजरात सरकार की सारी किफायतसारी पुनर्वास तक ही सीमित थी। इस बीच सर्वोच्च न्यायालय के मामले में गुजरात सरकार अपना यह नैतिक दावा बरकरार रखे थी कि वह विस्थापितों की हर संभव मदद कर रही है मगर छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी उन विकासकार्यों की प्रगति में रोड़े अटका रही है, जिसका लाभ गुजरात के लाखों गरीबों को मिलने वाला है।

1985 के शासनादेश में यह शब्दछल एक गन्दी चाल थी जो विश्वबैंक के साथ हुए ऋण-समझौते का घोर उल्लंघन करती थी। 1985 का वर्ष अब समाप्ति पर था। अगले दो सालों तक सर्वोच्च न्यायालय में हलफनामों तथा विश्वबैंक को ज्ञापनों के जरिये हमने संघर्ष जारी रखा।

इस दास्तान के विस्तार में न जाते हुए हम सीधे अप्रैल 1987 में आते हैं। **पर्यावरण विभाग ने सरदार सरोवर** योजना के लिए जो स्वीकृति रोक रखी थी, उसे केन्द्र सरकार ने राजनैतिक कारणों से मंजूरी दे दी। गुजरात सरकार के रास्ते की एक बाधा दूर हुई। इसके बाद आगमन हुआ **विश्वबैंक** के अगले **शिष्टमण्डल** का

जो गुजरात सरकार की विस्थापितों के साथ खेली जा रही गन्दी चालों के बारे में पूरी जानकारी से लैस होकर आया था। शिष्टमण्डल ने डूबने वाले उन दूर-दराज के गाँवों का दौरा किया जहाँ सरकारी उच्चाधिकारी भी कभी नहीं फटके थे। उसने उन शिकायतों की छानबीन की जो हमने बैंक को हमने अपने इंग्लैंड स्थित सहयोगियों के मार्फत पहुँचाई थी। परिणामस्वरूप एक वाक्युद्ध विश्वबैंक और गुजरात सरकार के बीच अवश्यंभावी था। बाद में हमने जाना कि इस वाक्युद्ध में एक समय ऐसा आया जब गुजरात सरकार अपनी करतूतों का पर्दाफाश हो जाने से इस कदर तिलमिला उठी कि उसने विश्वबैंक को कह दिया कि वह अपनी सहायता अपने पास रखे। दूसरी तरफ बैंक का शिष्टमण्डल भी इतना चिढ़ गया कि वह ऋण रद्द कर देने के बारे में सोचने लगा। यह तनावपूर्ण खामोशी अगले छः माह तक बीच-बीच में गुजरात के मुख्यमंत्री के इन बयानों से टूटती रही कि अगर जरूरत पड़ी तो योजना का सारा खर्च खुद जुटा लेगा। विस्थापित लोग जो काफी लम्बे समय से इंतजार कर रहे थे, अब बेचैन होने लगे। हर 'कल' में ढलनेवाला 'आज' उनके मनोबल व संघर्ष पर सवाल बनने लगा था। उनकी विभीषिका महसूस की जा सकती थी। संघर्ष से सम्बन्धित हमारी याचिका जो सर्वोच्च न्यायालय की सूची में अन्तिम सुनवाई के लिये न्यायमूर्ति श्री पी० एन० भगवती के पीठ में थी, 1986 के आखिर में सुनवाई के लिये नहीं ली जा सकी। इस निर्णय पर विस्थापित और हम काफी आस लगाये बैठे थे। इस याचिका की अन्तिम सुनवाई होते होते रह गयी। इसके पीछे कोई मानवीय षडयंत्र था या संयोग का क्रूर मजाक, यह कहना तथ्यों के अभाव में हमारे लिये मुश्किल ही रहेगा। इस बीच 21 दिसम्बर 1986 को न्यायमूर्ति भगवती ने अपने पद से अवकाश ग्रहण किया। उनकी जगह नये मुख्य न्यायाधीश आये तथा इस आगमन के कारण विचाराधीन मामलों की प्राथमिकता में भी परिवर्तन हो गये। तब से वह याचिका जहाँ रुकी थी, अब तक वहीं है।

विश्वबैंक ने ऋण का भुगतान रोक दिया। इससे तो कुछ साँस लेने का समय मिला पर हमें यह प्रश्न सता रहा था कि अगर गुजरात सरकार ऋण-समझौता वास्तव में रद्द कर दे तो विस्थापितों का क्या होगा? सर्वोच्च अदालत से निकट भविष्य में कोई आशा नहीं थी। हम इंतजार करते रहे। अनिश्चित भविष्य के तनाव से बोझिल विस्थापित और हम अपने आपको एक कड़े व लम्बे संघर्ष के लिये तैयार करने में जुट गये। नवम्बर 1987 में विश्वबैंक के नये अध्यक्ष श्री कोनेबल का भारत में आगमन हुआ। हमें उनसे मिलने के लिये बुलाया गया। परंतु यह बैठक महज सम्पर्क का आयोजन होकर रह गयी। हालांकि विश्वस्त सूत्रों से हमें मालूम हुआ कि पुनर्वास के प्रश्न पर सरकार के साथ बैंक ने कड़ा रुख अख्तियार

किया। गुजरात सरकार के हौसले पस्त हो चुके थे। ऋण-समझौता रद्द करने की शेखी बघारना बन्द हो चुका था। गुजरात सरकार के पास अब कोई विकल्प नहीं रह गया था।

इसी परिप्रेक्ष्य में 23 दिसम्बर 1987 को जिस दिन गुजरात सरकार के उच्चाधिकारियों ने हमें नये शासनादेश सौंपे, उस दिन से पुनर्वासनीति की शक्ल ही बदल दी। हमारी जो माँगे थीं, उससे कहीं अधिक इसमें दिया गया था। मुख्यमंत्री ने दावा किया, जो एक हद तक सही भी था कि यह न केवल भारत बल्कि सारे विश्व में पुनर्वास के बारे में एक क्रांतिकारी नीति है। **उनके भाषण का सुर ऐसा था मानो अपने आप एकाएक विस्थापितों के प्रति उदार होकर गुजरात सरकार ने यह नीति घोषित की हो परन्तु 7 साल लम्बा हमारा संघर्ष इस दावे के खोखलेपन का साक्षी है।** थोड़ी सी इज्जत अगर गुजरात सरकार की रह गयी थी तो वह इस फर्क से कि इस बार की नीति में वह टुच्चापन और कृपणता नहीं थी जो अबतक उसकी नीतियों का पर्याय बन चुकी थी।

II

नई पुनर्वास नीति : दिसम्बर 1987 के शासनादेश

1. 4 दिसम्बर का शासनादेश

यह एक छोटा सा शासनादेश है परन्तु इसका महत्व इसलिये है कि यह उस बदमाशी को दूर कर देता है जो गुजरात सरकार ने नवम्बर '1985 के शासनादेश में की थी। इसमें इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि जमीनमालिक विस्थापित अपनी पसंद की पाँच एकड़ जमीन पाने के अधिकारी होंगे। इससे भी महत्व की बात यह कही गई है कि विस्थापित व्यक्ति की जमीन के मुआवजे तथा अपनी पसंद की न्यूनतम पाँच एकड़ जमीन की कीमत के बीच जो फर्क होगा वह सरकार अनुग्रह-राशि के रूप में चुकायेगी। यह एक बड़ी राहत थी। हमारा मानना है कि यह प्रावधान ऋण-समझौते में इतना स्पष्ट नहीं था परन्तु समझौते के द्विपक्षीय अर्थघटन के फलस्वरूप इसे शामिल करना पड़ा क्योंकि गुजरात सरकार के पास और कोई चारा नहीं था।

एक अन्य महत्वपूर्ण हिस्सा इस शासनादेश का यह था कि जिन लोगों को मई 1985 में यानी समझौते पर हस्ताक्षर के पूर्व उजाड़ दिया गया था उन्हें भी इस शासनादेश के लाभ प्राप्त होंगे।

2. 14 दिसम्बर का शासनादेश

यह महत्वपूर्ण शासनादेश 30 मई 1985 के शासनादेश का स्थान लेगा जिसका अमल ही नहीं हो सका था। इसमें प्रावधान है कि सरकारी परती जमीन या जंगल जमीन पर खेती करनेवालों (अवैध कब्जेदारों) को भी अपनी पसंद की 5 एकड़ जमीन मुहैया की जायेगी तथा उन्हें भी अनुग्रह-राशि का लाभ मिलेगा।

3. 17 दिसम्बर का शासनादेश

यह शासनादेश भूमिहीन विस्थापितों को भी न्यूनतम 5 एकड़ अपनी पसंद की जमीन एवं अनुग्रह राशि प्राप्त करने का अधिकारी बनाता है। यह एक दूरगामी असरवाला शासनादेश है। गुजरात के लिए इतना दूरगामी नहीं जितना कि म० प्र० के विस्थापितों के लिए क्योंकि वहाँ भूमिहीन विस्थापितों की सख्या काफी बड़ी होने का अनुमान है।

गुजरात में विस्थापितों की जो विस्तृत सूची हमने तैयार की है, उसके अनुसार लगभग 3000 परिवारों में से केवल 65 परिवार ही भूमिहीन हैं। चूँकि गुजरात सरकार ने सभी संभावनाओं पर विचार करके यह शासनादेश जारी किया है इसलिये म० प्र० व महाराष्ट्र दोनों सरकारों को भी इसी का अनुसरण करना पड़ेगा और इसलिए भी कि ऋण-समझौते में भी इसका प्रावधान है तथा इसका सारा खर्च गुजरात सरकार को ही उठाना है न कि मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र सरकार को।

4. कुछ अन्य शासनादेश :

इसके अलावा भी गुजरात सरकार ने कुछ शासनादेश जारी किये हैं जिनका उद्देश्य विस्थापितों की कठिनाइयों को हल्का करना है। हम इन शासनादेशों के विस्तार में नहीं जाते क्योंकि वे दोयम बात हैं। अहम सवाल है, विस्थापितों के लिये जीवनयापन की स्थायी क्षमता रखने वाले साधन मुहैया करने का और सरदार सरोवर योजना के संदर्भ में इसका एक ही माने है—जमीन।

III

विस्थापन की समस्या तथा नयी पुनर्वास-नीति का निहितार्थ

चाहे जिस हिसाब से देखें भारत के विस्थापित लोगों के अंधकारमय जीवन में यह एक प्रगतिशील कदम है। गुजरात के मुख्यमंत्री की यह बात झूठ नहीं थी कि यह एक क्रांतिकारी पुनर्वास-नीति है। फिर भी इस नीति के घोषणा के बाद जो प्रतिक्रिया

हमें प्राप्त हुई उनमें इस भारी विजय की स्वीकृति के बजाय कई जरूरी मुद्दों की अवहेलना का आरोप हम पर है। लेख के इस भाग में हम उन्हीं मुद्दों की चर्चा करेंगे।

1. परन्तु इसके अमल का क्या होगा ?

जैसे ही इस नीति की घोषणा हुई हमारे आलोचक मित्रों ने कहा यह तो महज एक कागज का पुर्जा है। इसका अमल होगा ही नहीं। इससे विस्थापितों की दशा में कोई फर्क नहीं आयेगा। इतनी निजी जमीन बिकाऊ मिलेगी ही नहीं। सरकार जमीन खोजने और दिलवाने के लिये कुछ नहीं करने वाली है। यह अपेक्षा बेजा और अवास्तविक है कि आदिवासी लोग जमीन स्वयं ढूँढ लेंगे और बिना ठगाये खरीद भी सकेंगे। सरकार अपनी जिम्मेदारी से मुँह चुरा रही है। हमारा फर्ज तो यह है कि हम सरकार पर अपनी जवाबदारी निभाने के लिये जोर डालें। कुछ नावाकिफ आलोचकों ने यह भी कहा कि इसी नीति के फलस्वरूप विस्थापित लोग भारी कर्ज में डूब जायेंगे और यह सारा पुनर्स्थापन एक मजाक बनकर रह जायेगा। कुछ अन्य लोग इसलिये भी परेशान थे कि उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि सरकार विश्वबैंक के दबाव में आकर ऐसी नीति वास्तव में बना सकती है।

सरकार से एक लम्बे अर्से से ठगाये जाने व धोखा खाने के अनुभवों ने उसके प्रति अविश्वसनीयता बढ़ायी है, सतर्कता बनायी है। और खासकर हमारे जैसे समूह, जिसका सरकार के दोमुँहेपन से नजदीकी, घनिष्ठ व लम्बा वास्ता पड़ा हो, इन चेतावनियों को महज खामख्याली कहकर नहीं उड़ा सकते। इसके बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर हमारा मानना है कि कई बार भिन्न मुद्दों को हम अलग करके नहीं देख पाते हैं, परिणामस्वरूप बड़ी उलझनें पैदा होती हैं।

अपने संघर्ष के आरंभिक दिनों में जब हम तत्कालीन पुनर्वास-नीति (जून 1979 का शासनादेश) को लागू करवाने के लिये लड़ रहे थे, यही आलोचक नसीहत दे रहे थे कि हमें नीति बदलने के लिये लड़ना चाहिये न कि इसे अमल में लाने के लिये, क्योंकि यह महज आग बुझाने का काम है, न कि उसे अटकाने का। जब हम सच्चे दिल से नीतिगत परिवर्त्तन के लिये लड़ रहे थे, आलोचकों ने कहा कि हम बड़े भोले हैं, और भ्रम में हैं कि कानून के द्वारा मुहिम फतह कर लेंगे। जब विश्वबैंक पर नीति-परिवर्त्तन हेतु दबाव लाने के लिये हमने अपने ब्रिटेन स्थित मित्रों का साथ लिया तो कहा गया कि विश्वबैंक पर जो खुद शोषण का साधन है, कैसे भरोसा कर सकते हैं कि वह गरीबों की मदद को आयेगा। जब गरीबों पर पड़ेगा यह व्यवस्था का साथ देगा। जिस नीति-सम्बन्धी दस्तावेज के लिए हम संघर्ष कर रहे

1341
COMMUNITY HEALTH CELL
47/1, (First Floor) St. Marks Road
BANGALORE - 560 001

थे, वह एक मरीचिका थी और उसके पीछे पड़ना हमारा राजनैतिक नासमझी और अनाड़ीपन। हम वो लाइलाज दीवाने लोग थे जो इसका हश्र देखने को तैयार नहीं थे। संक्षेप में, अब जो नीति है वह पहले एक संभावना थी। परन्तु अब पुराने प्रश्न भुला दिये गये हैं और उनका स्थान नये प्रश्नों ने ले लिया है।

मुद्दा यह नहीं है कि जब एक बार नई पुनर्वास-नीति बन ही गयी है तो उसका अमल भी अपने आप हो जायेगा। ऐसा मानना कोरी आत्मसतुष्टि होगी। अगर हम घटनाओं का सिंहावलोकन करें तो साफ दिखायी देगा कि यह नयी नीति इसलिये अपरिहार्य बनी कि इसके पीछे कई ताकतें काम कर रही थीं। उसके बिना सरदार सरोवर स्वप्न ही रह जाता। गुजरात सरकार के हाथ बंधे हुए थे। यह विजय किसी एक संगठन की नहीं है चाहे वह कितना ही एकजुट क्यों न हो; किसी व्यक्ति की नहीं है चाहे वह कितने ही महत्व के पद पर क्यों न हो या किसी एक संस्था की नहीं है चाहे वह कितनी भी उदात्त क्यों न हो। **अगर यह जीत किसी की है तो वह उन सभी स्थल और काल में बिखरी हुई छोटी-बड़ी ताकतों की है, जिनकी पूरी निष्ठा विस्थापितों के हित में थी।** ये ताकतें अब भी अपनी जगह कायम हैं। पहले से अधिक सजग, संगठित और मजबूत। क्योंकि नयी नीति के घोषणा से उनका यह विश्वास और भी दृढ़ हुआ है कि विस्थापितों की जो न्यायोचित माँगे हैं, वे उन्हें मिलकर ही रहेंगी। सरकारी प्रतिरोध की कमर टूट गयी है। सरकार चाहती है कि सरदार सरोवर योजना निर्विघ्न आगे बढ़े। गुजरात सरकार यह भी जानती है कि यदि पुनर्वास का प्रश्न अनिर्णीत रहा तो सारी योजना खटाई में भी पड़ सकती है। यह उसके लिये फायदेमन्द नहीं होगा। विस्थापित अब अपने हकों के प्रति पूर्णतः सचेत हैं तथा वे इन अधिकारों को लेकर रहेंगे जो कि अब कानून द्वारा लागू करवाये जा सकते हैं।

विश्वबैंक भी अपने ही कारणों से पुनर्वास के प्रश्न से मुँह नहीं फेर सकता क्योंकि उसे भी इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। विश्वबैंक में जिन्होंने पुनर्वास के प्रश्न को यक्षप्रश्न कहा था वे मित्र भी इसके लिये जी जान से लड़ेंगे। इसके अलावे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी स्थिति पर कड़ी नजर रखे हुए हैं।

अब हम नीति के व्यावहारिक पहलू पर आते हैं। जहाँ तक जमीन उपलब्ध होने का सवाल है गुजरात में इसका हल होना मुश्किल नहीं दिखायी देता, क्योंकि विस्थापितों ने (जी हाँ, विस्थापितों ने स्वयं) अब तक करीब 10 हजार एकड़ जमीन खोज निकाली है। हमारी इस काम में भूमिका काफी गौण रही है। यह बात हम जोर देकर इसलिये कह रहे हैं कि कुछ आलोचकों का मंतव्य है कि आदिवासी

अपने आप जाकर जमीन नहीं खोज सकते । गुजरात में बसनेवाले सभी चारो प्रकार के आदिवासियों ने इस काम में पहल की है । अगर थोड़ी सी सहायता और प्रोत्साहन दिया जाय तो कोई कारण नहीं है कि आदिवासी स्वयं जमीन न खोज सकें । जमीन की खरीदी में ठगाये जाने का सवाल रहता है पर वह भी उपरोक्त सहायता एवं पुनर्वास विभाग पर निगरानी से काफी हद तक घटाया जा सकता है। जो आलोचक यह सवाल और संदेह उठा रहे हैं, वे शायद हमारी तरह इस प्रकार की प्रक्रियाओं से जुड़े नहीं हैं, इसीलिए इस तरह की अटकलबाजी करते रहते हैं। अब रही संभावना विस्थापितों के कर्ज से दब जाने की सो अनुग्रह-राशि मिलने से इस समस्या के पैदा होने का सवाल नहीं उठता ।

शायद यह बात दोबारा कही गयी लगे, फिर भी हम दोहराना चाहते हैं कि हमारे देश की डाँवाडोल परिस्थिति में कहीं भी किसी बात की निश्चितता नहीं है । कभी भी, कहीं भी गड़बड़ हो सकती है । बात बदल सकती है। और यही परिस्थिति पुनर्वास पर भी लागू होती है । यह नीति इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि पुनर्वास सही ढ़ंग से हो ही जायेगा । हमारा प्रयत्न इस व्यापक निराशावाद को जितना बन सके उतना कम करके शक्यता के आसार को पहले से अधिक बनाना है । यहाँ यह कहने का लोभ हम नहीं संवार पाते कि अगर हर प्रकार के दमन, खासकर सरकार के दमन के खिलाफ संघर्ष के प्रयत्नों को इतनी संशयवृति से देखना कि लड़ाई सर करने का अवसर ही न दिया जाय, पर काबू रखा गया होता तो आज हम इतनी निराशाजनक स्थिति में न होते ।

2. मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के विस्थापितों का क्या ?

कुछ लोगों ने यह भी छींटाकशी की कि चूँकि अब गुजरात के विस्थापितों का मसला हल हो चुका है, इसलिये अन्य दो प्रांतों के विस्थापितों के भविष्य में हमें कोई दिलचस्पी नहीं रही । यह एक घटिया आरोप है । हमारे **संघर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हम न केवल गुजरात, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के विस्थापितों के लिये लड़ रहे थे वरन सारे देश के विस्थापितों का हित हमारे मद्देनजर था ।** 1984 में जब संघर्ष ने मोड़ लिया हम तभी समझ गये थे कि यह एक विशाल समस्या के लिये लड़ाई है । गुजरात के विस्थापितों के मन में साफ था कि यह लड़ाई सिर्फ गुजरात तक सीमित नहीं है । यह लक्ष्य काफी दूर और कठिन दिखता था तब भी यह कभी नजर से दूर नहीं हुआ । इस संघर्ष के सघन दौर के साथ ही हमने मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के संगठनों से सम्पर्क करना प्रारंभ कर दिया था । परन्तु समय एवं शक्ति के अभाव तथा उद्देश्यों व प्राथमिकताओं

की विभिन्नता के कारण यह प्रयास बहुत आगे नहीं बढ़ सका। रणनीति की दृष्टि से यह जरूरी था कि इस लड़ाई का केन्द्र गुजरात सरकार को बनाया जाय क्योंकि एक बार भी अगर गुजरात सरकार उचित नीति स्वीकार कर ले तो अन्य प्रांतों को भी उसी का अनुगमन करना था। 17 दिसम्बर का शासनादेश इसकी मिसाल है। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, इसका असर गुजरात के लिये बहुत मामूली है पर मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र के विस्थापितों के लिये बहुत महत्वपूर्ण। वरना गुजरात सरकार अपने भूमिहीन विस्थापितों को बिना शासनादेश के लाभान्वित कर सकती थी। विश्वबैंक के साथ हुए ऋण-समझौते में भी तीनों राज्यों के सभी प्रकार के विस्थापितों के लिये समान नीतियों का प्रावधान है। यह अकल्पनीय है कि इस अवस्था में विश्वबैंक सिर्फ गुजरात पर इन नीतियों को लागू करने के लिये दबाव डाले, बाकी दो राज्यों को मनमानी करने दे, जबकि पुनर्स्थापन का सम्पूर्ण खर्च गुजरात सरकार को ही वहन करना है। महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश सरकारों के लिये यह बड़ा बेतुका व मुश्किल होगा कि वे इस नीति को स्वीकार न करें। निस्सन्देह विस्थापितों की स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप इन नीतियों में कुछ फेरफार करने पड़ेंगे तथा इन्हें अमली जामा पहनाने के लिये मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के कुंभकर्णी प्रशासन को काफी झकझोरना होगा।

3. परन्तु जमीन है कहाँ? क्या आप बाँध का विरोध करने की बजाय उसके निर्माण में मदद नहीं कर रहे हैं?

कुछ मित्रों ने इस व्यावहारिक आधार पर हमारी आलोचना की है कि हम वस्तुतः ऐसी नीति के लिये लड़ रहे थे जिसका अमल ही संभव नहीं है क्योंकि मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र में खरीदने के लिये निजी जमीन उपलब्ध है ही नहीं। इस सवाल पर चर्चा करने के पहले दूसरे सवाल को लें जो पहले सवाल से जुड़ा है और एक माने में गंभीर सवाल है। कुछ लोगों ने पहला सवाल दूसरे सवाल के संदर्भ में ही उठाया है। हमें शक है कि उनका प्रमुख उद्देश्य बाँध को बनने से रोकना या उसमें देरी करवाना है। निजी जमीन की अनुपलब्धता बाँध रोकने का एक शक्तिशाली हथियार बन सकती है। यहाँ हम स्पष्टतः बता देना चाहते हैं कि यदि सचमुच जमीनें न मिलनेवाली हों तो बाँध का काम अविलम्ब रोक देना चाहिये। अधकचरे पुनर्स्थापन की कीमत पर **सरदार सरोवर** नहीं बन सकता। **सरदार सरोवर** की कई समस्याओं के बारे में हमें जानकारी है फिर भी इन दो उद्देश्यों में हम फर्क करते हैं—(1) सही व न्यायोचित पुनर्वास एवं (2) बाँध से होनेवाले तथाकथित नुकसानों के कारण उसे बनने से रोकना या उसमें रोड़ा अटकाना। जो संगठन गुजरात एवं महाराष्ट्र के विस्थापितों के बीच काम कर रहे हैं उनका घोषित उद्देश्य न्यायोचित

पुनर्स्थापन ही रहा है। अब परिस्थिति यह है कि पुनर्वास का मसला स्वयं इतना शक्तिशाली साधन बन गया है कि उसका इस्तेमाल योजना को अटकाने के लिये भी किया जा सकता है। हम मानते हैं कि ऐसा करना नैतिक दृष्टि से गलत एवं नाजायज होगा। जहाँ तक हमारी जानकारी है, तीनों राज्यों के विस्थापित जितना जल्दी हो सके पुनर्स्थापित होना चाहते हैं। बाँध का विरोध करने की उनकी शक्ति व इच्छा अगर कहीं है तो वह बहुत ही सीमित है। उनकी भावनाओं और सीमाओं की अवहेलना करना सही नहीं है। बाँध का निर्माण रोकने या अटकाने की दशा में विस्थापितों का भविष्य त्रिशंकु की तरह अधर में लटका रहेगा। उनकी अपेक्षा बाँध रोकने की नहीं वरन न्यायोचित पुनर्वास की है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तीनों राज्यों के किसी भी सक्रिय ग्रुप ने अब तक बाँध को रोकने के लिये विस्थापितों को संगठित करने का प्रयत्न नहीं किया है। उनकी माँग हमेशा न्यायोचित पुनर्वास की रही हैं। अगर बाँध को रोकना अनिवार्य लगता हो तो उसके खिलाफ अन्य ठोस आधारों पर एक मजबूत मामला तैयार करके आंदोलन चलाना चाहिये।

अब पहला महत्वपूर्ण सवाल—महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश के विस्थापितों को मंजूर हो, ऐसी जमीन पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध है क्या? हमें बताया गया है कि महाराष्ट्र में आसपास ऐसी निजी जमीन उपलब्ध नहीं है, पर विस्थापितों ने अनाच्छादित जंगल की जमीन पर बसाये जाने को तरजीह दी है। ऐसी जमीन बड़े परिमाण में उपलब्ध है, परन्तु 1980 के वन-संरक्षण अधिनियम के अनुसार बिना केन्द्र सरकार की अनुमति के उन्हें पुनर्वास के लिये मुक्त नहीं किया जा सकता। यह ज्ञातव्य है कि ऋण-समझौते में भारत सरकार ने विश्वबैंक को यह आश्वासन दिया है कि अगर और कुछ नहीं बन पड़ा तो वह महाराष्ट्र के विस्थापितों के लिये जंगल की जमीन मुक्त करेगी। इसलिये महाराष्ट्र एवं भारत सरकार के लिये इसमें से बचने का कोई विकल्प ही नहीं है। जहाँ तक मध्यप्रदेश का सम्बन्ध है, समस्या कुछ लोगों के लिये जंगल की जमीन मुक्त करने तथा बाकी के लिये निजी जमीन तलाश करने की है। मध्यप्रदेश की परिस्थिति के बारे में हमारा अपना कोई अनुभव नहीं है, न ही मध्यप्रदेश के सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को इस परिस्थिति का कोई अन्दाज है। 1985 में जब हम जी-जान से 5 एकड़ जमीन के लिये लड़ रहे थे तब गुजरात सरकार यह कहकर बैठ गयी कि इतनी निजी जमीन बिकाऊ है ही नहीं। तब आदिवासी विस्थापितों ने आसपास के गाँवों का चक्कर लगाया और उन दिनों में भी 6 हजार एकड़ बिकाऊ जमीन की फेहरिश्त सरकार की नाक के नीचे धरा जा सका था। मध्यप्रदेश के बारे में हम अनुमान से कुछ आगे जाना चाहते हैं। नर्मदा विकास **प्राधिकरण** के भूतपूर्व अध्यक्ष **श्री सुशील चन्द्र वर्मा** का यह बयान कलमबन्द है कि

मध्यप्रदेश में सरकारी जमीन उपलब्ध नहीं है परन्तु प्राधिकरण को 30 हजार एकड़ निजी विकाऊ जमीन के प्रस्ताव मिल चुके हैं। जाहिर है कि यदि मध्यप्रदेश के विस्थापित संगठित होकर जोरदार पहल करें तो जमीन का मिलना इतना मुश्किल नहीं होगा।

अब आखिरी सवाल रह जाता है कि—

4. क्या आप विकास की वर्तमान प्रणाली के विरोधी नहीं हैं ?

हमारा संक्षिप्त जवाब है—जी हां। हम विरोधी हैं। थोड़ा विस्तार से कहें तो—सक्रिय एवं लोकाभिमुख बुद्धिजीवियों एवं पेशेवर लोगों को विकास की इस धारा की आलोचना को सिर्फ सम्मेलन व गोष्ठियों तक सीमित नहीं रखना चाहिये। इसके लिए अधिक जरूरी है कि राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय लोकतांत्रिक संगठनों, संस्थाओं एवं मित्रों के सहयोग से इसका सक्रिय विरोध किया जाय। जनविरोधी विकास-योजनाओं का विरोध अंशतः या पूर्णतः, अपनी ताकत और सीमाओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।

हम मानते हैं कि अगर एक बार तीनों प्रांतों की सरकार को इस नीति को अमल में लाने के लिये मजबूर कर दिया जाय तो एक जोरदार मिसाल कायम होगी। और अगर, जैसी कि उम्मीद है, **सर्वोच्च अदालत** ने आखिरी सुनवाई में इस पर अपनी मोहर लगा दी तो देश भर में सभी जगह के विस्थापितों का इससे भला होगा। तब राज्य सरकारों के लिये इस मिसाल की अवहेलना करना इतना आसान न होगा। **विश्वबैंक** की सहायता से चलनेवाली सैकड़ों योजनाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा। पुनर्वास के सवाल को योजना बनाते समय विशेष प्राथमिकता देनी पड़ेगी। बहुत संभव है कि इस प्रकार के पुनर्वास सम्बन्धी नये प्रावधानों के कारण कई योजनायें खटाई में पड़ जायें। **विकास के नाम पर स्वच्छंद रूप से बनायी जानेवाली विशाल-काय योजनाओं के लिये इस प्रकार की नयी पुनर्वासनीति एक बड़ी चुनौती खड़ी करेगी।** यह विश्वबैंक के लिये प्रदर्शन और तीनों सरकारों के लिये आत्मश्लाघा का सामान बनकर रह जाय, यह जरूरी नहीं।

पर जरुरी यह है कि सक्रिय कार्यकर्त्ता हर मौके पर अपनी संशयता पर काबू रखें, उद्देश्यों को धन्धेबाजी में पड़ने से रोकें तथा देश विदेश की सीमाओं से परे रहकर, व्यवस्था के अन्दर एवं बाहर और विचारधाराओं के बंधन से ऊपर उठकर लोकतांत्रिक ताकतों को एकसूत्र में पिरोने का काम करें। **पुनर्वास की राष्ट्रीयनीति के लिये गुजरात की नीति ने बीज बो दिये हैं और इस प्रकार उन आन्दोलनों के लिये एक और हथियार प्रदान कर दिया है जो वर्तमान विकास के उद्देश्य, दिशा व प्रभावों के बारे में सही मायने में चिन्तित हैं।**

पुनःश्च......

गुजरात सरकार की पुनर्वास-नीति की एक खासियत शुरू से चली आ रही है। नर्मदा योजना में पिछले आठ सालों में बहुत सारे परिवर्त्तन आये हैं। पुनर्वास नीति भी परिवर्त्तनों के एक लम्बे दौर से गुजरी है। पर एक चीज हमेशा कायम रही है—सरकार का विस्थापित-विरोधी रवैया। नीति-विषयक निर्णय चाहे कुछ भी हों, उनका परिणाम एक ही आता है—विस्थापितों के बुनियादी हितों को काटना।

दिसम्बर '87 में निकले तीन शासनादेशों मे लिपिबद्ध नयी पुनर्वास-नीति के बारे में सामान्य जन ही नहीं, वकीलों की भी यही राय आयी थी कि इनमें हर तरह के प्रत्येक परिवार को अपनी पसन्द की 5 एकड़ जमीन देने की बात कही गयी है। इसके बावजूद 6 अप्रील 1988 को एडीशनल कलक्टर श्री जोशीपुरा ने इन शासनादेशों की यह वाहियात, अशोभनीय और घातक व्याख्या की कि इस नीति में प्रत्येक परिवार को नहीं, बल्कि प्रत्येक खाते को न्यूनतम 5 एकड़ जमीन देने की बात कही गयी है। इस अर्थगठन (व्याख्या) के परिणाम साफ थे। अगर उसे चुनौती नहीं दी जाती तो कम-से-कम दो हजार विस्थापित परिवारों का जीवन नष्ट हो जाता।

8 अप्रील से ही इस धोखेबाजी को चुनौती देने की शुरुआत कर दी गयी। पुनर्वास-सचिव और मुख्यसचिव को लम्बे व तीखे खत लिखे गये। प्रेस में भी मामला उठाया गया। पर इन सबका कोई जवाब सरकार की ओर से नहीं आया। 24 अप्रील को गुजरात के सभी विस्थापित गाँवों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई, जिसमें इस धोखेबाजी के खिलाफ लड़ने का निर्णय किया गया। दो कार्यक्रम तय हुए—(i) पर्चा रैली (ii) विस्थापित सम्मेलन।

गुजरात सरकार ने विस्थापितों को जानकारी देने के लिये गुजराती और अंग्रेजी में रंगीन व सजा-धजा पर्चा निकाला था। इसमें दिसम्बर की नयी पुनर्वास-नीति के सभी प्रावधानों को संक्षिप्त रूप में दिया गया था। साथ ही पर्चे के अन्त में यह लिखा गया था कि यह पर्चा सिर्फ जानकारी के लिये है, यह विस्थापितों के हक मांगने का आधार नहीं बन सकेगा। विस्थापितों ने इस चालाकी को पहचान लिया। उनका मानना था कि अगर इस पर्चे में विस्थापितों को प्राप्त अधिकारों को मांगने का हक ही नहीं दिया गया है तो जानकारी देने का अर्थ ही क्या है।

विस्थापितों ने इस पर्चे को विरोधस्वरूप वापस भेजने का निर्णय किया। छः पेज वाले फोल्डर (पर्चा) के प्रथम पृष्ठ पर मुख्यमंत्री अमर सिंह चौधरी का फोटो था और अन्तिम पृष्ठ पर उक्त टिप्पणी। मुख्यमंत्री के चित्र के मुंह से निकलते तीर का निशान बनाकर उसे उक्त टिप्पणी तक बढ़ाकर टिप्पणी को चारों ओर से घेर दिया गया और इस रूप में पर्चों को वापस भेज दिया गया। इस तरीके से विस्थापितों ने यह व्यक्त किया कि पर्चे का मूल उद्देश्य इस टिप्पणी को कहना ही है कि तुम्हें दिये जाने वाले अधिकार लिपिबद्ध हैं, पर उन्हें मांगने का अधिकार नहीं है। पन्द्रह-बीस दिन में हजार से भी ज्यादा पर्चा मुख्यमंत्री को डाक से वापस भेजा गया। पर्चों की डाक-रैली के इस अभियान का इतना तेज असर पड़ा कि सम्मेलन (14 मई '88) के 4 दिन बाद मुख्यमंत्री को पर्चे की उक्त टिप्पणी को वापस लेने की घोषणा करनी पड़ी।

इस दौरान भी सरकार द्वारा विस्थापित-विरोधी साजिश अलग-अलग स्वरूपों में जारी थी। 27 अप्रैल को नर्मदा विकास प्राधिकरण के नव नियुक्त अध्यक्ष सनत मेहता केवड़िया कोलोनी में अपनी ही संस्था द्वारा आयोजित विस्थापित शिविर में आये। पुनर्वास के सवाल पर उन्होंने लम्बा भाषण दिया, पर उसमें प्रति:परिवार न्यूनतम 5 एकड़ जमीन के मूल सवाल को छुआ ही नहीं। उसके बदले उन्होंने 10 साल बाद, केवड़िया कोलोनी से सब अधिकारियों के चले जाने पर उन भव्य इमारतों में विस्थापितों को बसाकर उनके लिये नये उद्योग खोलने की बड़ी-बड़ी बातें कहीं। विस्थापितों ने भव्य सपने के पीछे छिपी चालाकी को तत्काल समझ लिया और उस पर तीव्र प्रतिक्रिया दी। गाँवों में आयोजित शिविरों में इसीतरह की बातें जारी रहीं। "जमीन लेकर क्या करना है," "दुकानें लगाओ, उसमें कमाई होगी", "परिवार या खाते की बात छोड़ दो, किसान की बात कहो"— ऐसी-ऐसी बातें समझायी जाती रहीं। केवड़िया कॉलनी के पुनर्वास-अधिकारी भी ज्यादा ऊँची आवाज में बोलने लगे—"प्रति परिवार 5 एकड़ जमीन कभी मिलेगी नहीं, हम जितना दे रहे हैं ले लो"। संघर्ष वाहिनी की खुली आलोचना शुरू हुई। इस तरह संघर्ष वाहिनी और विस्थापितों के बीच अलगाव पैदा करने की कोशिश चलायी गयी। पर विस्थापित सचेत थे। बहकावे में आ जाने के बदले, ऐसी बातों से वे और विरोध में आने लगे। और इस प्रकार 14 मई के सम्मेलन के लिये पृष्ठभूमि बन चुकी थी।

गाँव-गाँव से स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सब मिलाकर 1500 से ज्यादा विस्थापित गुजरात सरकार के खिलाफ अपना आक्रोश जाहिर करने 14 मई के बड़गाम सम्मेलन में आये। इसके साथ ही गुजरात के अन्य हिस्सों से मित्र, समर्थक और

प्रेस के लोग तथा महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश में कार्यरत संगठनों के प्रतिनिधि सम्मेलन में शामिल हुए। अलग-अलग गाँव के 30-40 प्रतिनिधियों ने, जिनमें महिलायें भी थीं, सटीक ढंग से अपनी बातों को रखा। संगठन व एकता को बनाये रखने का आह्वान किया गया, जिसे जोरदार समर्थन मिला। अगर सरकार को थोड़ा सा भी भ्रम था कि विस्थापितों को विभाजित कर कमजोर किया जा सकेगा, तो वह इस सम्मेलन से पूर्णत: टूट गया। किसी भी हालत में सरकार की घपलेबाजी से आखिर तक लड़ने की घोषणा सभी वक्ताओं ने की। विभिन्न सवालों पर 7 प्रस्ताव पारित किये गये। गुजरात ही नहीं, महाराष्ट्र व मध्यप्रदेश के विस्थापितों के पुनर्वास-नीति में किसी भी अनियमितता व कमी का तीव्र प्रतिरोध करने और तीनों राज्यों के विस्थापितों से कंधा से कंधा मिलाकर लड़ने का संकल्प सम्मेलन में अभिव्यक्त हुआ। विस्थापितों को मंजूर हो—ऐसा पुनर्वास अगर नहीं दिया जाता है तो नर्मदा बाँध को नहीं बनने दिया जायेगा—यह सम्मेलन का एक प्रमुख नारा रहा।

सम्मेलन की ताकत से गुजरात सरकार का हौसला टूट चुका था। इससे पहले कभी भी विस्थापितों ने बाँध का काम रोक देने की धमकी नहीं दी थी। इसके पहले कभी भी विस्थापितों को इतने अधिकार कानूनन प्राप्त नहीं थे। विश्वबैंक का मिशन भी आने की तैयारी में था। ये सारी बातें सरकार के खिलाफ में थीं। 19 मई को सभी अखबारों में मुख्यमंत्री की यह घोषणा प्रकाशित हुई कि बड़गाम सम्मेलन की माँग के अनुरूप ही सभी विस्थापित परिवारों को उनके पसन्द की न्यूनतम 5 एकड़ जमीन दी जायगी। सरकारी पर्चे में लिखे गये आपत्तिजनक टिप्पणी को वापस लेने की घोषणा भी साथ ही की गयी। 30 मई और 1 जून को दो नये शासनादेश भी जारी हुए जिसमें प्रत्येक बालिग पुत्र को अलग से न्यूनतम 5 एकड़ जमीन देने की बात को स्पष्टत: व्याख्याबद्ध किया गया है।

सरकार पुनर्वास-नीति को जिस लापरवाही और निर्दयता से मरोड़ने की कोशिश करती रही है और जब विस्थापितों ने उसका तीव्र प्रतिरोध किया तो जिस आसानी व शीघ्रता से झुकती गयी है, उससे लगता है कि अभी भी चैन से बैठा नहीं जा सकता। जिस ढंग से सरकार अनुत्तरदायित्व की अभ्यस्त हो गयी है, वह इस घटना से चेतेगी नही और हम यह मान सकते हैं कि आगे भी वह ऐसे ही प्रयास करेगी। पर लड़ाई आगे बढ़ गयी है। विस्थापितों ने जो हासिल किया है, उसे वापस लेना अब लगभग असम्भव है। सभी विस्थापित अपने अधिकारों के प्रति इतने जाग्रत, सचेत व संगठित हैं कि उनकी अवहेलना अब असम्भव है।

वड़गाम विस्थापित सम्मेलन की माँगें

* संगठन द्वारा वनायी गयी विस्थापित परिवारों की पूर्ण सूची को मान्यता
* परित्यक्ता और विधवा औरतों को भी 5 एकड़ सिचाईयोग्य जमीन
* विस्थापित होने वाले गाँवों के वैसे गिने-चुने परिवारों, जिनकी जमीन नहीं डुव रही है या अंशतः डुव रही है, उन्हें भी विस्थापित मानकर पुनर्वास
* मकान का वाजिव मुआवजा, अभी मौजूद सभी मकानों का मुआवजा, मकान-मुआवजा का पैसा निकालने में पुनर्वास अधिकारी के मजूरी के प्रावधान की समाप्ति
* इस योजना में अव तक विस्थापित सभी गाँवों के हर परिवार को 5 एकड़ सिंचाईयोग्य जमीन, जमीन खरीदने में लगे मकान-मुआवजे की राशि की पूर्ति

तीनो राज्यों में पुनर्वास नीति पर पूर्ण अमल, हर परिवार पर न्यूनतम 5 एकड़ सिंचाई योग्य जमीन

---

* जंगल-जमीन में वसना चाह रहे परिवारों के लिये जंगल-जमीन मुक्त करने की शीघ्र कारवाई
* पढ़े-लिखे विस्थापितों को स्थायी नौकरी
* पैसे व खर्च के पास वुक का वितरण
* खरीदी गयी जमीन पर कर्ज के मामले पर आवश्यक कार्यवाही, खरीद से कम नाप में मिली जमीन की समस्या का समाधान
* सभी गाँवों में पानी, चारा, लकड़ी की व्यवस्था
* केवड़िया कॉलनी में आराम की जगह और पानी का इंतजाम
* नये कैनल में आयी जमीन के वदले जमीन

आज तक पुनर्वास का मतलब रहा है, उजड़नेवाली आबादी को बसने की जगह और छीन रही जमीन का मुद्रा की शक्ल में मुआवजा। जरूरी नहीं, घर की जगह जरूरत भर हो, मुआवजा जमीन की वाजिब कीमत हो। होता तो इतना भी नहीं रहा है। मुआवजा देकर आबादी भटकने को छोड़ दी जाती है। मुआवजे का भी बड़ा हिस्सा दफ्तर के अमलों की जेबों में चला जाता है। विस्थापन के नतीजों की मन हिला देनेवाली त्रासद जीवन-गाथायें हर विकास योजना के इर्द-गिर्द देखी जा सकती हैं। और वहीं योजना में लगे कार्यरत लोगों के लिये सुविधाओं से लैस एक नया शहर खड़ा किया जाता है। यही है, पुनर्वास की शासकीय नीति।

सही पुनर्वास वही हो सकता है, जिसका मूल जीवन हो। पुनर्वास की जननीति विस्थापित आबादी के जीवन को केन्द्र में रखकर ही बनायी जा सकती है। पुनर्वास यानी जीवनयापन के स्थायी व सुरक्षित साधन और सांस्कृतिक-सामुदायिक जीवन के उपयुक्त अवसर की बहाली। विस्थापितों के हित के प्रति संवेदनशीलता की बुनियाद पर ही जीवनयापन के स्थायी और सुरक्षित साधन हासिल करने की माँग पर हमारा पुनर्वास-संघर्ष चला है और ऐतिहासिक कामयाबी तक पहुँचा है। हमारा यह संघर्ष पुनर्वास की जननीति, जीवन-मूलक पुनर्वास-नीति के प्रति प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति है। संघर्ष के लम्बे दौर में हासिल हमारा अनुभव हर जगह के विस्थापितों को समर्पित है।

अहम सवाल है—विस्थापितों के जीवनयापन की स्थायी क्षमता रखनेवाले साधन मुहैया करने का और सरदार सरोवर योजना के संदर्भ में इसका एक ही माने है—जमीन ।......

हमारे संघर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हम न केवल गुजरात, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के विस्थापितों के लिये लड़ रहे थे वरन सारे देश के विस्थापितों का हित हमारे मद्देनजर था ।......

यह नयी नीति इसलिये अपरिहार्य बनी कि इसके पीछे कई ताकतें काम कर रही थीं । यह विजय किसी एक संगठन की नहीं है चाहे वह कितना ही एकजुट क्यों न हो, किसी व्यक्ति की नहीं है चाहे वह कितने ही महत्व के पद पर क्यों न हो या किसी एक संस्था की नहीं है चाहे वह कितनी भी उदात क्यों न हो । अगर यह जीत किसी की है तो वह उन सभी स्थल और काल में बिखरी हुई छोटी-बड़ी ताकतों की है, जिनकी पूरी निष्ठा विस्थापितों के हित में थी । ये ताकतें अब भी अपनी जगह कायम हैं । पहले से सजग, संगठित और मजबूत ।......

पुनर्वास की राष्ट्रीय नीति के लिये गुजरात की नीति ने बीज बो दिये हैं और इस प्रकार उन आंदोलनों के लिये एक और हथियार प्रदान कर दिया है जो वर्तमान विकास के उद्देश्य, दिशा व प्रभावों के बारे में सही मायने में चिन्तित हैं ।......

विकास के नाम पर स्वच्छंद रूप से बनायी जानेवाली विशालकाय योजनाओं के लिये इस प्रकार की नयी पुनर्वास-नीति एक बड़ी चुनौती खड़ी करेगी ।......

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक—लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, नयाटोला, पटना-८०० ००४, दूरभाष : ५४९२८